उपसंहार:-

दुनियाँ में अब तक हुई क्रांतियों के लगभग सभी नायकों ने सत्ता का नियंत्रण अपने हाथ में रखा । महात्मा गांधी और जे.पी. इसके अपवाद हैं क्योंकि उन्होंने क्रांति को सत्ता पलट के सीमित दायरे से आगे ले जाने का प्रयास किया । राज्य सत्ता को ही उन्होंने राष्ट्र और समाज के पर्याय के रूप में स्वीकार्य नहीं किया बल्कि राष्ट्र और समाज को राज्य सत्ता से अधिक व्यापक और बुनियादी माना । क्रांति की सामाजिक प्रक्रिया से नए मूल्यों पर आधारित समाज-रचना की । इस बुनियादी बात को राष्ट्रीय स्तर के नेताओं में जे.पी. ने ही समग्रता से स्वीकारा ।

जे.पी. राष्ट्र के सच्चे सिपाही थे । राष्ट्र के प्रति उनकी अकूत श्रद्धा थी । इसे एक बात से आसानी से समझा जा सकता है जब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आजाद भारत में सभी नेता कुर्सी पाने की जोड़-तोड़ में जुटे हुए थे, तब जे.पी. आजाद भारत का स्वर्णिम संकल्प लिए एक ऐसे समाज का स्वप्न देख रहें थे जिसमें प्रत्येक नागरिक स्वाभिमान एवं स्वाधीनता का जीवन व्यतीत कर सके । इस सपने को साकार करने हेतु वे मार्क्सवाद, समाजवाद, गांधीवाद और सर्वोदयवाद जैसी तमाम विचारधाराओं के प्रभाव में भी आये । उन्हें जीवन में दो बार (1942 और 1974) लगभग तीन दशकों के अंतराल पर देश का नेतृत्व करने का दुर्लभ अवसर मिला । दोनों ही बार उन्होंने देश को दिशा दी । आज अगर देश में बहुदलीय लोकतंत्र और अभिव्यक्ति की जो भी स्वतंत्रता है इसके पीछे जे.पी. आंदोलन का बहुत बड़ा योगदान है ।

जे.पी. आंदोलन बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार व अशिक्षा से त्रस्त और नाराज युवकों की परिणति थी । 5 जून, 1974 को गांधी मैदान में जे.पी. ने संपूर्ण क्रांती का आह्वान किया और यह आंदोलन व्यवस्था परिवर्तन का आंदोलन बन गया । उस समय राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने कहा - "सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।" जे.पी. आजाद भारत को जिस रूप में देखना चाहते थे उसकी संकल्पना लिए आजीवन संघर्षरत रहे । समाज में एक बड़े बदलाव की अभिलाषा से भूदान, ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य के रूप में शुरू हुआ आंदोलन संपूर्ण क्रांति का आंदोलन बन गया । अब उस आंदोलन का हश्र क्या हुआ ? भविष्य में उसके दूरगामी परिणाम क्या रहे ? यह अलग विषय है, लेकिन संपूर्ण क्रांति ने देश मे चैन से सो रहे लोलों को जगा दिया । खुद के अधिकारों के प्रति सजग बनाने का कार्य किया । राष्ट्र के प्रति एक चेतना विकसित की । इस रूप मे आजाद भारत का यह सबसे सफल आंदोलन कहा जा सकता है ।

तमाम दबावों और अंकुश लगाए जाने के बावजूद पत्रकारिता ने भी इस आंदोलन को राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा करने का साहस दिखाया । संपूर्ण क्रांति का नारा अखबारों की सुर्खियाँ बन गया । पत्र-पत्रिकाओं ने संसदीय गलियारों में खलबली मचा दी । इस आंदोलन की अनुगूंज पूरे देश मे सुनाई पड़ने लगी । आंदोलन परवान चढ़ता गया । जे.पी. की नजर में इंदिरा गांधी की सरकार भ्रष्ट और अलोकतांत्रिक होती जा रही थी । 1975 ई. में निचली अदालत में इंदिरा गांधी पर चुनाव में भ्रष्टाचार का आरोप साबित हो जाने पर जे.पी. ने उनके इस्तीफे की मांग की । परंतु लोकनायक जे.पी. के नैतिक और वैचारिक नेतृत्व में आम जनता की ओर

से परिवर्तन की उठती बुलंद आवाज को तत्कालीन सत्ताधीशों ने अपनी सत्ता के लिए खतरा माना और राष्ट्र पर आपातकाल के रूप में तानाशाही थोप दी । इतना ही नहीं प्रजातंत्र का चौथा आधार स्तंभ माने-जाने वाले मीडिया पर भी कड़े प्रतिबंध लगा दिए । जबकि कुछ पत्रिकाओं ने साहस दिखाया भी तो उन्हें उसका खामियाजा भुगतना पड़ा । अखबारों पर सेंसरशिप लागू कर दी गयी । न्यायपालिका को बंधक बना दिया गया । 19 माह तक देश किस तरह चला किसी को इसकी भनक तक नहीं लगी । संसद विपक्षी नेताओं के बिना सूनी थी और असंवैधानिक तरीके से 5वीं लोकसभा का कार्यकाल बढ़ा लिया गया था ।

इमरजेंसी की घोषणा तो कर दी गयी लेकिन प्रेस सेंसरशिप का कोई खाका तैयार नहीं था । सरकार की नजर में अखबारों को छपने से रोकना जरूरी था । उस समय दिल्ली के ज्यादातर अखबार (जैसे इंडियन एक्सप्रेस, टाईम्स ऑफ़ इंडिया, पायनियर, नेशनल हेराल्ड, वीर अर्जुन आदि) बहादुरशाह ज़फर मार्ग से निकलते थे । इसलिए बहादुरशाह ज़फर मार्ग की बिजली 25 जून, 1975 से ही काट दी गयी ताकि अख़बार निकल न सकें । सरकार को यह डर था कि व्यापक पैमाने पर नेताओं के गिरफ्तारी की खबर छपने से हालात असामान्य न हो जाय । इंदिरा गांधी प्रेस से बहुत ख़फा थी । उनका मानना था कि प्रेस बातों को बढ़ा-चढ़ा कर पेश कर रहा है । 22 जुलाई, 1975 को उन्होंने राज्यसभा मे दिए भाषण मे कहा कि- ‘पहले जब अखबार नहीं थे तो आंदोलन भी नहीं थे । दरअसल आंदोलन अखबार के पन्नों पर ही हैं । अगर आप जानना चाहते हैं कि अखबारों पर सेंसरशिप क्यों लगाई गयी है तो इसका जवाब

यही है। मुझे इस बात में थोड़ा भी सन्देह नहीं है कि अखबार लोगों को भड़का रहें हैं । वह पहले भी ऐसा करते रहें हैं ।"

श्रीमती गांधी को यह अंदेशा था कि प्रेस सरकार के खिलाफ़ है । उन्होंने खुद कई बार झूठी, मनगढ़ंत बातें पेश कर देश की छवि धूमिल करने का आरोप प्रेस पर लगाया । 5 अगस्त 1975 को प्रेस के लिए दिशा-निर्देश जारी किये गए जिसमें सरकार विरोधी किसी भी खबर या आंदोलन का प्रकाशन वर्जित कर दिया गया । आजादी के बाद देश में यह पहला मौक़ा था जब प्रेस को इन हालातों से गुजरना पडा था । इमरजेंसी के दौरान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ ही प्रेस की स्वतंत्रता भी समाप्त कर दी गई ।

प्रेस के एक हिस्से ने सेंसर का विरोध किया और प्रकाशनों पर बंदिश लगाने के सेंसर के रवैये को कोर्ट में चुनौती दी । इंडियन एक्सप्रेस के चैयरमैन रामनाथ गोयनका व स्टेट्समैन के संपादक आर.सी.इरानी के साथ कई लोगों ने सेंसर के खिलाफ़ जमकर संघर्ष किया । 'आज' व 'दिनमान' सहित कई पत्र-पत्रिकाओं का साहस कबिल-ए-तारीफ़ था । ये लगातार अतिवादी शक्तियों के खिलाफ़ लिखते रहे, लेकिन इमरजेंसी के बाद इनके रवैये में परिवर्तन आया । 'दिनमान' सरकार की तरफ झुक गया और 'आज' में आंदोलन की खबरें ही छपनी बंद हो गई । इमरजेंसी के बाद कई पत्र-पत्रिकाओं और उनके मालिकों ने सरकार के सामने हथियार डाल दिए । जिन्होंने सरकार का समर्थन किया उन पर खूब विज्ञापन लुटाये गए और जिन्होंने जनता के संघर्ष का साथ दिया उन अखबारों व पत्रिकाओं को सरकारी विज्ञापन की सूची में शामिल नहीं किया गया । प्रेस का एक बड़ा तबका सरकार की हिमायत कर रहा था,

पर एक वर्ग ऐसा भी था जो पत्रकारिता के सरोकारों और अपने फर्ज से नहीं डिगा । वह लगातार सरकार की गलत नीतियों का विरोध करता रहा। आजादी के बाद यह पहला मौक़ा था जब कांग्रेस पार्टी को हार का मुंह देखना पडा था, जिसमें प्रेस की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी । प्रेस ने आंदोलन को जन-जन तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । खासकर यह आंदोलन हिंदी पट्टी से खड़ा हुआ था और हिंदी के तमाम छोटे-बड़े पत्र-पत्रिकाओं ने किसी न रूप अपनी भूमिका स्पष्ट की । यह पत्रकारिता का योगदान ही था कि जे.पी. पटना में संपूर्ण क्रांति का विगुल फूंक रहे थे और उसकी गूँज से संसदीय मीनारें हिलने लगी थी । सेंसरशिप के बावजूद प्रेस ने संयम नहीं खोया । वह पूरी जिम्मेदारी से अपना काम करता रहा । इस तरह की संवेदनशील परिस्थिति में भी आंदोलन, सरकार और जनता के बीच बेहतर सामंजस्य स्थापित करने में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका को नाकारा नहीं जा सकता । यही वजह है कि इतने बड़े और व्यापक फलक पर हुए जे.पी. आंदोलन को एक गांधीवादी आंदोलन के रूप में भी जाना गया ।